श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

द्वितीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान परिचय) अभ्यास ६

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : श्री शत्रुंजय मुक्ति वीरेन्दु रत्नत्रयी ट्रस्ट-हुबली

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

२. अजित-शांति स्तव (चालु)

ललिअयं (ललितक) छंद

तित्थवरपवत्तयं तम रय रहियं,
धीरजणथुअच्चिअं चुअकलि कलुसं;
संति सुहप्पवत्तयं तिगरणपयओ,
संतिमहं महामुणिं सरणभुवणमे. ललिअयं........१८

किसलयमाला छंद

विणओणयसिरिरई अंजलिरिसिगणसंथुअं थिमिअं,
विबुहाहिव धणवई नरवई थुयमहिअच्चिअं बहुसो;

अईरुग्गय सरयदिवायर समहिअसप्पभं तवसा;
गयणंगण वियरण समुईयचारणवंदिअं सिरसा, किसलयमाला.....१९

-: शब्दार्थ :-

तित्थवर - श्रेष्ठ तीर्थ अर्थात चतुर्विध संघ के
पवतयं - प्रवर्तक
तमरयरहियं - मोहनीय वगैरे कर्मोसे रहित
धीरजणथु - प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा स्तुत्य और पूजित
चुअकलिकलुसं - कलह की कालिमा से रहित
संतिसुह - शांति और सुख
पवत्तयं - प्रवतक (फैलाने वाले)
तिगरण पयओ - त्रिकरण / मन वचन और काया से तत्पर
संति - शांतिनाथ
अहं - मैं
महामुणि - महामुनि के
सरणं - शरण में
उवणमे - जाता हूँ
विण ओणय - विनय से झुके हुए
सिरि - मस्तक
रइअंजलि - जिन्होंने अंजलि रची है
रिसिगण - ऋषिगण
संथुअं - स्मुति किये गये
थिमिअं - स्थिर / निश्चलता पूर्वक
विबुहाहिव - देवता के पति / इन्द्र
धणवइ - धनपति / कुबेर
नरवइ - नरपति / चक्रवर्ती
थुअ - स्तवित
महिअच्चिअं - प्रणाम से और पुष्पों से पूजित
बहुसो - बहुत बार
अइरुग्गय - तत्काल उदित्त
सरय दिवायर - शरद ऋतु के सूर्य से
समहिअ सप्पभं - अधिक कांतिवाले
तवसा - तप द्वारा
वियरण - विचरने से
गयणंगण - गगन रुपी आंगन में
समुइय - एकत्रित हुए
चारण - चारण मुनि
वंदिअ - वंदन किये गये (वंदित)
सिरसा - मस्तक से

गाथार्थ : श्रेष्ठ तीर्थ / चतुर्विध संघ के प्रवर्तक, मोहनीय वगैरह कर्मो से रहित, प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा स्तुति किये गये और पूजे गये हैं, जो कलह की कालिमा से रहित है,जो शांति और सुख को फैलाने वाले हैं, ऐसे महामुनि श्री शांतिनाथ का शरण मैं मन, वचन और काया से तत्परता पूर्वक (प्रणिधान पूर्वक) अंगिकार करता हूँ। १८

निश्चिलता पूर्वक विनय (भक्ति) से झुके हुए मस्तक पर दोनों हाथों से अंजलि रचने वाले ऋषिओं के समुह द्वारा स्तुति किए गये, इन्द्रों, कुबेर आदि देव, तथा चक्रवर्तीओं के द्वारा बहुत बार स्तवित, वंदित और पूजित, तप के द्वारा, तत्काल उदित शरद ऋतु के सूर्य से भी अधिक कांतिवान, गगन रुपी आंगन में विचरण करते एकत्रित हुए चारण मुनिओं से मस्तक द्वारा वंदन किये गये.....१९

समुहुं (सुमुख) छंद

असुर गरुल परि वंदिअ, किंनरोरग णमंसिअं;
देवकोडि सय संथुअं, समणसंघ परिवंदिअं. सुमुहं......२०

विज्जुविलसिअं (विद्युत विलसित) छंद

अभयं अणहं अरयं अरुयं;
अजिअं अजिअं पयओ पणमे. विज्जुविलसिअं........२१

-: शब्दार्थ :-

असुर - असुरकुमार
गरुल - सुवर्ण कुमार देवताओ
परिवंदिअं - वंदन किये गये
किंनर - किन्नर
उरग - व्यंतर देवो
णमंसिअं - नमस्कार किये गये
देवकोडिसयसंथुअं - सैकडों करोड देवताओं द्वारा स्तवित
समणसंघ - मुनिओं के संघ
परिवंदिअं - वंदना किये गये
अभयं - भयरहित
अणंह - पाप रहित
अरुहं - जन्म रहित
अजिअं - किसी से भी पराजय न पाये हुए
अजिअं - श्री अजितनाथ को
पयओ - तत्पर
पणमे - प्रणाम करता हूँ

गाथार्थ :- असुरकुमार और सुवर्णकमार देवताओं द्वारा वंदना किये गये, किन्नर और व्यंतर देवताओं द्वारा नमस्कार किये गये शतकोटि देवताओं द्वारा स्तुति किये गये, साधुओं के संघ द्वारा वंदना किये गये, भय रहित, पाप रहित, रोग रहित, कर्म रहित, जन्म रहित और किसी से भी पराभव (पराजय) नहीं पाये हुए देवाधिदेव अजितनाथ प्रभु को मैं तत्परता पूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

दीपक पूजा

श्रीगणधरवाद

छठ्ठे गणधर श्रीमंडितस्वामी

आधारग्रंथ - श्रीकल्पसूत्र : अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्रीगुणसागरसूरि म.सा. तथा सचित्र गणधरवाद : प.पू. अरुणविजयजी म.सा.

वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे में भगवान महावीर से भी पहले जन्मे हुए और उम्र में भी भगवान महावीर से बडे और भगवान महावीर की ही हाजिरी में मोक्ष में जाने वाले छठ्ठे गणधर श्रीमंडितस्वामी थे । मोरीयसन्निवेश गांव में ब्राह्मण ज्ञाति के विद्वान वशिष्ठ गोत्र के विप्रवर्य श्री धनदेव के घर मघा नक्षत्र में उनका जन्म हुआ था, उनकी माता विजयादेवी है वैसे यह विजयादेवी का दूसरा विवाह था । पहला विवाह विजयादेवी का मोरीयसन्निवेश गांव के ही काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण मौर्य के साथ हुआ था, और मौर्य से उन्हें एक संतान की प्राप्ति भी हुई थी जिसका दूसरा कोई विशेष नामकरण नहीं करने में आया था, इसलिये मात्र मौर्यपुत्र नाम से ही पहचाने जाते थे । छोटी उम्र में विधवा हुई छोटी संतान वाली विजया ब्राह्मणी की दूसरी शादी उसी गांव के वशिष्ट गोत्र के ब्राम्हण धनदेव के साथ हुई थी । श्रीकल्पसूत्र के आठवें व्याख्यान में इसका खुलासा ऐसे देते है कि ''उस देश में एक पति की मृत्यु के बाद बालविधवा के लिये दूसरा विवाह कर दूसरा पति बनाने का उस वक्त निषेध नहीं था ।'' ऐसा वृद्ध आचार्यो का मत है इसलिये मंडित एंव मौर्यपुत्र दोनों एक ही माता के पुत्र थे, दोनों की माता एक थी, परंतु पिता अलग-अलग थे और इसीलिये पिता के नाम पर चलते गोत्र के कारण दोनों के गोत्र भी अलग-अलग थे । मंडित का गोत्र वशिष्ठ व मोर्यपुत्र का गोत्र काश्यप था । छठ्ठे गणधर का पूरा नाम - श्री मंडित धनदेव वशिष्ठ था, वे वेदविद्या के अठंग अभ्यासी अध्यापक थे । मघा नक्षत्र में उनका जन्म हुआ था । छंद, निघंटु, पुराण, न्याय, व्याकरण आदि शास्त्रो में उनकी विद्वत्ता प्रशंसनीय थी, अध्यापक के रुप में प्रसिद्धि पाये हुए उनके लगभग ३५० शिष्य भी प्रखर विद्वान थे ।

सोमिल ब्राह्मण द्वारा आरंभ किये गये बडे यज्ञ में पधारने का आमंत्रण मिलने पर आपश्री भी अपने ३५० शिष्यों के साथ अपापापुरी में पधारे थे और अपने से पहले पांच विद्वान पंडितो ने भगवान महावीर के पास जाकर शंका का समाधान कर जैन साधु बने, जानकर वे भी अपनी शंका दूर करने के भाव से प्रभु के पास समवसरण में पहुंचे ।

मंडित नामक पंडित अपने साढे तीन सौ शिष्यो सहित प्रभु के पास आते है, उन्हें वीर प्रभु कहते है की, ''हे मंडित ! तु **''स ऐष विगुणो विभर्नु बध्यते संसरतिवा मुच्यते मोचयतिवा''** इन पदो का अर्थ ऐसा कर रहा है की, सत्वादिगुण रहित आत्मा सर्व व्यापक है, वो पुण्यपाप कर्म में बंधता नहीं है, संसार में परिभ्रमण करता नहीं है, कर्म से मुक्त होता नहीं है, वैसे ही दूसरो को भी मुक्त नहीं करता है, यह तेरा किया गया अर्थ बराबर नहीं है, इस अर्थ से ही तो तुझे ऐसी शंका हो गयी है कि, आत्मा को कर्म से बंध एवं कर्म से मुक्ति होगी या नहीं ? सुन, इन वेदपरो का अर्थ ऐसा है कि छद्मस्थ आदि गुण रहित वीतराग केवलज्ञानी, केवलदर्शनी ऐसी जो आत्मा ज्ञान से सर्वव्यापक है वो आत्मा यानी मुक्तात्मा वो कर्म से बंधती नहीं है, संसार में परिभ्रमण करती नहीं है । कर्म से मुक्त होने से कर्म से मुक्त होता नहीं और दूसरों को भी मुक्त नहीं करता कारण की मुक्तात्माओ को दूसरो को

मुक्त करने के लिये फिर से अवतरित होने का ही नहीं होता है । ये वेदपद कर्म से सदा के लिये मुक्त हो गये ऐसे मुक्तात्माओं का स्वरुप बताता है, परंतु छद्मस्थ अवस्थावाला जीव कर्म से बंधता है, संसार में परिभ्रमण भी करता है । सम्यग्, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना कर कर्म से मुक्त भी होते है और दूसरोको वे सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र में लीन करा कर कर्म से मुक्त भी कराते है । वीर प्रभु के ऐसे बोध से संशय दूर होने से प्रतिबोध पाकर विनय भाव से अपने साढे तीन सौ विद्यार्थी शिष्यो सहित मंडित पंडित प्रभुचरणों मे झुक गये दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य बने एवं प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर द्वादशांगी की रचना की ।

व्यापक विगुण ऐसी आत्मा को कर्म का बंध, मोक्ष है ही नहीं, आत्मा जैसी अनन्त शक्तिशाली को बंध, मोक्ष हो ही नहीं सकता ? यह उनकी मान्यता वेदवाक्यो पर से दृढ हो गयी थी और भगवान महावीर के पास से अनेक प्रमाणो सहित युक्तिपूर्वक समाधानकारक उत्तर मिलने पर शंका टली, सच्चे अणगार साधु बने, भगवान महावीर के शासन में छठ्ठे गणधर होने का मान पाया ।

चारित्र लेने के बाद द्वादशांगी की रचना कर, १४ पूर्व के ज्ञाता बने एवं १४ वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहकर उम्र के ६७ वे वर्ष में चार घनघाती कर्मो को क्षय करके केवलज्ञान पाये, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बने । १६ वर्ष तक केवली के रुप में अनेक भव्यात्माओं का कल्याण कर खुद का कुल ३० वर्ष का चारित्र पालन किया । चौथे आरे में जन्मे हुए मंडितस्वामीने वास्तव में महापुण्याई के योग से सर्वश्रेष्ठ वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरस्त्र संस्थान वाला शरीर पाया था । शिष्यो की परम्परा उनकी नहीं चली । अपनी ८३ वर्ष की अंतिम अवस्था में राजगृही में पधारे और अंतिम एक महिने के निर्जल उपवास कर पादपोपगमन अनशन कर अघाती कर्म भी खपाकर निर्वाण पाकर प्रभु महावीर से पहले मोक्ष में सिधारे, संसार का अंत किया ।

सातवें गणधर श्रीमौर्यपुत्रस्वामी

मौर्य सन्निवेश गांव के काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण श्रेष्ठ मौर्यविप्र के घर सातवें गणधर का जन्म हुआ था, उन्हें जन्म देने वाली रत्नकुक्षी माता विजयादेवी उत्तम ऐसे रोहिणी नक्षत्र में जन्म देकर धन्य धन्य बन गयी थी । विजयादेवी दो संतानो की माता थी उसमें प्रथम मौर्यपुत्र थे एवं दूसरे मंडित थे ।

पिता के नाम तथा गांव के नाम से ही बने हुए अपने नामवाले ''मौर्यपुत्र'' का पूरा नाम था श्री मौर्यपुत्र मौर्य काश्यप । ब्राह्मण कुलको सुलभ ऐसी वेद-विद्या के अध्ययन में वे व्यस्त हुए, अनेक शास्त्रों का अभ्यास किया, सिद्धहस्त विद्वान हुए । अध्यापन के व्यवसाय में जुडकर उन्होंने अनेक ब्राम्हण पुत्रों को तैयार कर सरस्वतीपुत्र बनाया ऐसे वे ३५० शिष्यों के अध्यापक गुरु बने ।

देश परदेश में शास्त्रार्थ सभा में हाजरी देते एवं अपनी उपस्थिती तथा कंठस्थ विद्या से वे सभाजनो को मंत्रमुग्ध कर देते, कर्मकांडी के रुप मे वे यज्ञ-यज्ञादि अनुष्ठानों में भी जाते थे ।

योगानुयोग अपापापुरी में आयोजित एक विशाल यज्ञ में वे सोमिलविप्र के आमंत्रण से शिष्यो के साथ गये, शंकाओ का समाधान करने का सुनहरा अवसर मिला है, ऐसा सुन वे भी भगवान महावीर के पास जाने को उत्सुक हुए और अपने ३५० शिष्यों के परिवार के साथ समवसरण में आये ।

वर्षो से यज्ञ-यज्ञादि कर्मकाण्ड कराने के बावजूद तथा मंत्र आदि का जाप नित्य करने के बावजुद भी उन्होंने कभी देव-देवियों को देखा नहीं था, इसलीये यह यज्ञ-यज्ञादि सिर्फ मन शान्ति के लिये ही है क्या ? यानि

देव-देवी कोई है ही नहीं ? होते तो आते क्यों नहीं ? फिर उनका शरीर रहने का स्थान वगैरह कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता है, इसलिये इस शंका के समाधान हेतु वे आज प्रभु के पास आये थे। भगवान ने प्रश्न पूछा, प्रभु के पास आये मौर्यपुत्र पंडित को प्रभु कहते है की, '' **हे मौर्यपुत्र ! को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्रयमवरुण कुबेरादीन्** '' इन वेदपदो से तू देवो का अस्तित्व है या नहीं, ऐसी शंका को धारण करने वाला हो गया है, कारण की इन वेदपदो का अर्थ इंद्र, यम, वरुण, कुबेर वगैरह मायास्वरुप देवो को कौन जानता है ? इस अर्थ से तुझे ऐसा हो गया है की इंद्र, यम,वरुण, कुबेर वगैरह देव मायारुप है, वास्तव में देव नहीं है, परंतु ''**स ऐष यज्ञायुधी यजमानो अंजसास्वर्गलोकगच्छति**'' इन वेदपदो का अर्थ - यज्ञरुप हथियारवाला वो यह यजमान वेग से स्वर्गलोक में जाता है, ऐसा है। इसलीये ये वेदपद देवो के अस्तित्व को दर्शानेवाले है। वैसे ही प्रत्यक्ष रुप से तु इस समवसरण में आकर बैठे देवो को देख रहा है, इसलीये देवो के अस्तित्व के विषय में शंका रख मत। वेदपदो में जो मायासमान देवो को बताने में आया है वो देव नित्य देव के रुप में रहने वाले नहीं है, उन देव बने हुओ को भी वंहा से च्यवित होकर दूसरी गति में जाना पडता है, दूसरे जीव अच्छे कार्य करके देव होते है इसलीये ये वेदपद देवो की भी अनित्यता को सूचित करते है। प्रभु के ऐसे वचन सुन संशय दूर होने से प्रतिबोध पाये हुए मौर्यपुत्र साडे तीन सौ शिष्यों के साथ विनयभाव से प्रभुचरणों में झुक पडे और प्रभु के पास से दीक्षा लेकर प्रभु के शिष्य बने और प्रभु के पास से त्रिपदी पाकर उन्होंने द्वादशांगी की रचना की।

देवताओ को प्रत्यक्ष देख मौर्यपुत्र की महावीर पर श्रद्धा दृढ हो गयी, सम्यक्त्व पाये और ६५ वर्ष की वृद्ध वय में भी अपने ३५० शिष्यों के साथ जीवन वीरप्रभु के चरण में समर्पित कर के सच्चे साधु बने, त्रिपदी पाये, स्याद्वाद की दृष्टि से सर्व तत्व समझ में आ गया। श्रीवीर प्रभु के सातवें गणधर होने का मान मिला और द्वादशांगी से १४ पूर्वो की रचना की। ३५० शिष्यों के गण को सम्हालने वाले वे गणी थे।

चौथे आरे में जन्में हुए और भगवान महावीर से भी बहुत ज्यादा उम्र वाले श्रीमौर्यपुत्र वज्रऋषभनाराच संघयण तथा समचतुरस्त्र नामक संस्थान के धारक थे, उन्होंने भी ३० वर्ष का चारित्र पर्याय पाला और उसमें १४ वर्ष तक छद्मस्थ रहे। उसके बाद उन्हें उम्र के ७९ वर्ष की वृद्धवय में केवलज्ञान - केवलदर्शन प्राप्त हुआ। सर्वज्ञ बन आपश्री १६ वर्ष तक इस पृथ्वी को पावन करते विचरते रहे, अनेक भव्यात्माओ का कल्याण किया।

९५ वर्ष की अंतिम उम्र में वे राजगृही पधारे एवं अंतिम एक महिने के निर्जल उपवास की संलेषणापूर्वक पादपोपगमन अनशन कर भगवान महावीर की हाजरी में ही निर्वाणपद, मोक्ष पाकर सदा के लिये स्थिर बने , निरंजन, निराकारी बने।

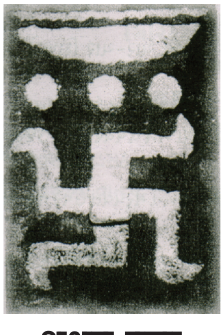

अक्षत पूजा

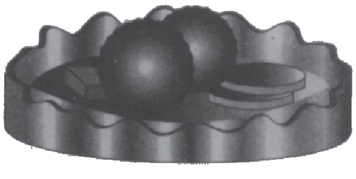

नैवेद्य पूजा

(लघु संग्रहणी) जैन भूगोल

आ. हरिभद्रसूरि म.

जंबूद्वीप के पर्वतोंका अंशतः परिचय करने के बाद अब हम आगे पर्वतोंके शिखरों का अभ्यास करेंगे, उनकी जानकारी प्राप्त करनेका प्रयत्न करेंगे ।

सोलस वक्खारेसु चउ चउ कूडा य हुंति पत्तेयं ।
सोमणस गंधमायण, सत्तट्ठ य रुप्पि महाहिमवे ।।१३।।
चउतीस वियड्ढेसु, विज्जुप्पहनिसढ नीलवंतेसु ।
तह मालवंत सुरगिरि, नव नव कूडाइ पत्तेयं ।।१४।।
हिमसिहरिसु इक्कारस, इय इगसट्ठीगिरिसु कूडाणं ।
एगत्ते सव्व धणुं, सय चउरो सत्तसट्ठीय ।।१५।।

अर्थ : सोलह वक्षस्कार पर्वतों में हरेक को चार-चार शिखर है । सौमनस और गंधमादन को सात सात शिखर है, रुक्मि एवं महाहिमवंत पर्वत को आठ आठ शिखर है ।।१३।।

चौतीस वैताढ्य, विद्युत्प्रभ, निषध, नीलवंत एवं माल्यवंत और मेरु पर्वत इन हरेक पर्वतपर नौ नौ शिखर है ।।१४।।

हिमवंत और शिखरी पर्वत (ये दो वर्षधर पर्वत) पर ग्यारह शिखर है । इस तरह एकसठ पर्वतों पर कुल मिलाकर कूटों की संपूर्ण संख्या चारसौ सडसट होती है ।

महाविदेह क्षेत्र में आये हुए सोलह वक्षस्कार पर्वत पर हरेक को चार चार शिखर है अतः कुल १६ x ४ = ६४ शिखर है ।

देवकुरु और उत्तरकुरु के पास रहे हुए अनुक्रम से सौमनस एवं गंधमादन पर्वत पर सात सात शिखर है । अतः कुल मिलाकर २ x ७ = १४ शिखर है । रुक्मि और महाहिमवंत इन दोनों वर्षधर पर्वतपर आठ आठ शिखर है अतः कुल २ x ८ = १६ शिखर है ।

चौत्तीस वैताढ्य, विद्युत्प्रभ, निषध, नीलवंत एवं माल्यवंत और मेरुपर्वत पर नौ नौ शिखर है अतः ३९ x ९ = ३५१ शिखर है । हिमवंत एवं शिखरी पर्वत पर ग्यारह ग्यारह शिखर है अतः कुल मिलाकर २ x११= २२ शिखर है ।

उपरोक्त सभी शिखरों की संख्या मिलाकर -

६४ + १४ + १६ + ३५१ + २२ = ४६७ कुल शिखरों की संख्या चारसौ सडसठ होती है ।

१) ये बहुसंख्य शिखर रत्नमय है, ३४ वैताढ्य के तीन तीन शिखर रत्नमय है, अतः १०२ शिखर सुवर्णमय है । शेष ३६५ शिखर रत्नमय है ।

२) (अ) वैताढ्य पर्वत के ३०६ शिखर सवा छह (६।) योजन मूल विस्तार और उंचाईवाले है । जबकि उपर उनका विस्तार तीन योजन से कुछ अधिक है ।

२ (ब) विद्युतप्रभ, माल्यवंत और मेरु पर्वत पर एक एक कूट सहस्त्रांककूट कहलाता है, क्योंकि १००० योजन मूल में विस्तार एवं उंचाई वाले है । उपर का विस्तार ५०० योजन का है । इन सहस्त्रांक कूट के नाम अनुक्रम से हरिकूट, हरिसहकूट, और बलकूट है ।

२) (क) अन्य १५८ शिखर मूल में ५०० योजन विस्तार वाले एवं उपर २५० योजन विस्तार वाले तथा ५०० योजन उंचाईवाले है ।

३) सभी ६१ पर्वतों पर अंतिम शिखर सिद्धकूट कहलाता है । इस सिद्धकूट पर सिद्धायतन (शाश्वत जिन चैत्य) है । प्रत्येक सिद्धायतन के मध्य में १०८ प्रतिमाजी (ऋषभानन, चंद्रानन, वर्धमान तथा वारिषेण जिन की २७-२७) विराजमान है । सिद्धायतन को पश्चिम दिशा में द्वार न होने से पूर्व-उत्तर-दक्षिण तीन दिशाओं में तीन द्वार पर एक एक चौमुखजी स्थित है । इसकी १२ प्रतिमाएं होती है । अतः इस प्रत्येक सिद्धायतन में कुल (१०८+१२=१२०) एकसौ बीस प्रतिमाजी होती है । ६१ सिद्धायतन होने से उसकी कुल प्रतिमाजी ६१ x १२०=७३२० होती है । ये सब जिनबिम्ब ५०० योजन उंचे होते है तथा उनके विविध अंग विविध रत्नोंके बने हुए होते है । आइये हम इन शाश्वत चैत्य एवं शाश्वत प्रतिमाजी को भावसे वंदन करें ।

४) अन्य बाकी रहे हुए ४०६ शिखरों पर उस उस पर्वत के अधिष्ठायक देव देवियों के समचौरस प्रासाद होते है और उनमें उनका निवास रहता है ।

गिरिकूटों की संख्या गिनती की दुसरी रीत

चउ सत्त अट्ठ नवगे गारस कूडे हिं गुणह जहसंखं ।
सोलस दु दु गुणयालं, दुवे य सगसट्ठि सय चउरो ।।१६।।

चार, सात, आठ, नौ और ग्यारह कूटोंद्वारा अनुक्रम से सोलह- दो, दो उनचालीस और दो से गुणो तो चारसो सडसठ की संख्या होती है ।

पूर्व गाथाओं की बात ही यहाँ पर संक्षिप्त में बतायी है ।

४ x १६	=	०६४ (वक्षस्कार पर्वत)
७ x २	=	०१४ (सौमनस गंधमादन)
८ x २	=	०१६ (रुक्मि महाहिमवंत)
९ x ३९	=	३५१ (वैताढ्य-विद्युत्प्रभ-निषधः आदि)
११ x २	=	०२२ (हिमवंत शिखरी)
कुल		४६७

श्रावक - दिनकृत्य

गुरु वंदन

गुरु की तैंतीस आशातनाएं

जिनदर्शन एवं, पूजा के कर्तव्य को पूर्ण कर श्रावक उपाश्रय में गुरुवंदन करने अवश्य जाता है। गुरुवंदन के महत्व और विधि को जानने से पहले गुरुसंबंधी आशातनाएं जानकर उन्हें टालने के लिये सविशेष प्रयास करना चाहिये।

शास्त्र में गुरु की तैंतीस आशातनाएं बताई गई है। सुज्ञ श्रावक ने गुरु की आशातनाएं टालनी चाहिये। गुरु की तैंतीस आशातनाएं निम्नोक्त है -

१) गुरु से आगे चले तो आशातना होती है।
२) गुरु के दोनो बाजू पर साथ चले तो (अविनय) आशातना होती है।
३) गुरु के नजदीक पीछे चले तो भी खांसी छींक आने पर गुरु के उपर श्लेष्म का छींटा पडे तो आशातना होगी।
४) गुरु की ओर पीठ करकर बैठे तो आशातना होगी।
५) गुरु के दोनों बाजू पर बराबरी से बैठे तो आशातना होगी।
६) गुरु के पीछे बैठे तो आशातना होगी।
७) गुरु के आगे खडे रहने से दर्शन करने में अंतराय हो तो आशातना होगी।
८) गुरु के दोनो बाजू पर खडा रहने पर समासन होगा वह अविनय है अतः आशातना होगी।
९) गुरु के पीछे खडे रहने पर आशातना होगी।
१०) आहार, पानी गुरु से पहले शुरु करें तो आशातना होगी।
११) गमनागमन की आलोचना गुरु से पहले लें तो आशातना समझना।
१२) रात्री में सोते हुए गुरु पूछे कि कोई जाग रहा है ? तब स्वयं कुछ जागते हुए भी आलस्य से जवाब न दिया तो आशातना होगी।
१३) गुरु कुछ कहने वाले हि हो उसके पहले बोल पडे तो आशातना लगे।
१४) आहार, पानी लाकर प्रथम अन्य साधुओं को कहकर फिर गुरु को कहे तो आशातना लगती है।
१५) आहार, पानी लाकर प्रथम अन्य साधुओं को बताकर फिर गुरु को बतायें तो आशातना लगती है।
१६) आहार, पानी की निमंत्रणा प्रथम अन्य साधुओं को करे फिर गुरु को करे तो आशातना लगती है।
१७) गुरुसे बिना पूछे अपनी मरजी से स्निग्ध मधुर आहार अन्य साधु को देवे तो आशातना होती है।
१८) गुरु को देने के बाद स्निग्धादिक आहार बिना पूछे भोजन कर लेवे तो आशातना लगती है।
१९) गुरु का बोलना सुना अनसुना कर जवाब न दिया आशातना होती है।
२०) गुरु के सामने कठोर या उच्चस्वर से बोले तो आशातना लगती है।
२१) गुरु के बुलाने के बाद भी अपने स्थानपर बैठकर जवाब दे तो आशातना होती है।
२२) गुरु ने कोई काम के लिये बुलाया हो और क्या है ? ऐसा उत्तर दे तो आशातना लगती है।
२३) गुरु कुछ करे तो तुरंत ''तुमहि करो'' ऐसा जवाब दे तो आशातना होती है।
२४) गुरु का व्याख्यान सुनकर खुश होने के बजाय मनमें दुःखी हो तो आशातना लगती है।

२५) गुरु कुछ बोलते हो तो खुद बीच में बोलना शुरु कर दे, गुरु की बात विशेष विस्तार से करे तो आशातना होती है ।

२६) गुरु कथा कहते हो उसमें भंग कर अपनी बात कहने लगे तो आशातना होती है ।

२७) गुरु की पर्षदा भंग कर दे जैसे कि अब गोचरी का समय हो गया, अब प्रतिलेखना का समय हुआ, ऐसा कहकर सब को उठा दे तो गुरु का अपमान होता है और आशातना लगती है ।

२८) गुरु के कथा कथन के बात खुद विस्तार से बताये अपनी चतुराई बताये तो भी गुरु की आशातना होती है ।

२९) गुरु के आसन को पैर लगाने से आशातना होती है ।

३०) गुरु के संथारे को पैर लगाने से आशातना होती है ।

३१) गुरु के आसनपर बैठ जाने से आशातना होती है ।

३२) गुरु से उंचे आसनपर बैठनेसे आशातना होती है ।

३३) गुरु के सामने आसन पर बैठे तो आशातना होती है

गुरु वंदना

गुरुवंदण महत्ति विहं । तं फिट्टा छोभ बारसावतं । सिर नमणाइ सुपढमं पुन्न खमासमणदुगि बिअं ।।१।।
तई अतु व दण दुगे । तत्थमिहो आइमं सयल संघे । बीयंतु दंसणीणय । पयढियाण च तइयतु ।।२।।

गुरु वंदन तीन प्रकार से होता है -

१) फेटा वंदन २) थोभ वंदन और ३) द्वादशवर्त वंदन

दो हाथ जोडकर मस्तक झुकाने से फेटा वंदन होता है । यह फेटा वंदन समस्त श्री संघको किया जाता है ।

दो खमासमणा देकर इच्छाकार सह शाता पूछकर अब्भुठिया के पाठ सहित वंदना करना वह थोभ वंदन कहलाता है । थोभ वंदन साधु-साध्वीजी भगवंत को करते हैं ।

द्वादशावर्त वंदन इर्यावही पडिक्कमी - लोगस्स का काउस्सग्ग करके मुहपत्ती पडिलेहण कर वांदणा देकर विधि पूर्वक अब्भुठियो खमाकर, राइओ - देवसिओ आलोववा पूर्वक कीया जाता है । द्वादशवर्त वंदन आचार्य - उपाध्याय वगैरह पदस्थ को ही करते हैं । फिलहाल गच्छाधिपति को ही यह वंदन करने का व्यवहार है ।

गुरु वंदन से लाभ

नीआ मोअं खवे कम्मं । उच्चा गोअं निबंधए ।
सिथिलं कम्मं गंठितु । वंदणेण नरो करे ।।

गुरु को वंदन करने से प्राणी नीच गोत्र का क्षय करता है । उच्च गोत्र का बंध करता है, निकाचित कर्मग्रंथि का भेदन करते हुए शिथिल बंधनरुप कर देता है ।

श्रीकृष्ण महाराजा ने श्री नेमनाथस्वामी को वंदन कर तीर्थंकर गोत्र बांधा, क्षायिक समकित की प्राप्ति की । सातवी नारकी का बंधन शिथील कर तिसरे नरक के आयुष्य में रुपांतरित कर लिया ।

द्रव्य और भाववंदन

गुरुवंदन के दो प्रकार है ।

१) द्रव्य वंदन २) भाव वंदन

आंतरिक भावों के बिना सिर्फ सूत्र का पाठ बोलकर वंदन की विधि करना वह द्रव्य वंदन है । अंतर के बहुमान से विधि पूर्वक वंदन करना वह भाव वंदन है ।

द्रव्य वंदन से भाव वंदन ज्यादा लाभदायक है ।

शीतलाचार्य को वंदन करने उनके चार भांजे साधु आ रहे थे । परंतु गांव के बहार ही शाम हो गयी और वे गाँव के बाहर रहे । वहाँ एक भांजे मुनिराज को हर्ष के आवेश पूर्वक गुरुवंदन की भावनाभातें भातें रात को ही केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी । शेष तीन भांजे मुनि तो इर्ष्या से सबसे पहले वंदन के लिये जाने की उतावल करने लगे । सबेरे जल्दी उठकर तैयार होकर शीतलाचार्य के पास जाकर द्रव्यवंदन किया, तभी वहाँ चौथे भांजे मुनि (केवली) आये । तब अन्यो ने पूछा, ''स्वामी ! हम चारों में वंदना से किसे विशेष लाभ हुआ ?'' शीतलाचार्य ने कहा जो सबसे अंत में आये उन्हें ।

तब सब कहने लगे, ''ऐसा क्यों ? '' तब गुरु शीतलाचार्य ने कहा, '' उन्हें तो रात्री में ही वंदन की भावना भाते भाते गांव के बहार ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है ।''

तब शेष तीनो मुनि उठकर केवली मुनि को भाव से वंदन कर क्षमापना मांगते है । भावसे वंदन करने से तीनो मुनि केवलज्ञान प्राप्त करते हैं ।

गुरु का बहुमान

अभ्युथानं तदालोके । भियनं च तदागमे ।।

शिरस्य जलिसंश्लेषः । स्वयमासन ढोलकनं ।।

आचार्यादि गुरु भगवंतो का सविशेषता से बहुमान करने की बात समझाते हुए कहते है -

आचार्यादि को आते हुए देखकर खडे होना, सामने जाना, मस्तक पर अंजलिबद्ध प्रणाम करना, उन्हे आसन देना और उनके आसन ग्रहण करने के पश्चात ही उनके सामने विनयपूर्वक बैठना चाहिये । वनियपूर्वक याने कैसे यह बताते हुए कहते है -

पर्यस्तिका अवष्ठंम् । तथा पाद प्रसारणं ।।

विकथा प्रबलं हास्यं । वर्जयेद्ररु संन्निधौ ।।

पालथी मारकर, खंभा या दिवाल का टेका लेकर, पैर फैलाकर, विकथा करते हुए, अधिक हंसते हुए, गुरु के पास नहीं बैठना । विशेषता से कहते हुए कहते है - गुरु के बराबर पास बैठने से , गुरु के आगे बैठने से, गुरु को पीठ देकर बैठने से, गुरु के आगे पैर पर पैर चढाकर बैठने से एवं लंबे पैर कर बैठने से भी गुरु की आशातना है । अतः ये सब आशातनाएं टालना ।

गुरु की देशना कैसे सुनें ?

निंदा विकथा का त्याग कर मन, वचन, काया की एकाग्रता रख, हाथ जोडकर, उपयोगवंत रहकर, ध्यान देकर, भक्ति एवं बहुमानपूर्वक गुरु की देशना सुनना । आगम में बताये हुए विधि पूर्वक आशातना का त्याग करने के लिये गुरु से साढे तीन हाथ अवग्रह क्षेत्र से बहार रहकर, निर्जिव स्थान पर बैठकर देशना सुननी चाहिये ।

कर्म - विज्ञान

(आधार ग्रंथ - कर्म - विपाक (प्रथम कर्मग्रंथ) - आ. देवेन्द्रसूरि म.)

आयुष्य - कर्म

सुर-नर-तिरि निरया ऽऽ ऊ, हडि-सरिसं नामकम्म चित्तिसमं ।

बायाल-ति-नवइ-विहं ति-उत्तर-सयं च सत्तट्ठी ।। २३ ।।

गाथार्थ - देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक का आयुष्यकर्म हेड यानि बेडी के समान कहा गया है।

नामकर्म चित्रकार के समान है, जिसके बयालिस, तिरानवें, एक सौ तीन या सडसठ भेद होते है।

जिस कर्म के उदय से जीव निश्चित काल (जीवनकाल) की पूर्णता से पहली मृत्यु प्राप्त नहीं कर सकता, जब वह कर्म पूर्ण होता है, तब नियमा मृत्यु ही पाये। ऐसा जो कर्म वह आयुष्य है। यह आयुष्य कर्म पैरों मे डाली गई बेडी के समान है। यह कर्म जीव को भव में पकड कर रखने वाला है।

आयुष्य कर्म दो प्रकार के है :-

१) अपवर्तनीय याने काल की अपेक्षा से कम हो सके, तूट सके ऐसा।

२) अनपवर्तनीय याने काल की अपेक्षा से कम न हो सके ऐसा।

लम्बी रस्सी हो उसे हम सीधा रखकर उसके एक छोर को (दीपक की बाती की तरह) जलायें तो धीरे धीरे दूसरे छोर तब जलने में लंबा समय लगता है पर यदि उस रस्सी को पूरा गोल लपेटकर आग की भट्ठी में डाल दें तो अल्प समय में ही जल जायेगी।

इसी तरह शांतिपूर्वक आयुष्य की दोरी जले तो जीव लंबे समय तक जीये वह ''**अनपवर्तनीय**'' आयुष्य है, जो जितना है उतना भोगा जाये।

परंतु अकस्मात हो, आत्महत्या करे अथवा अन्य किसी बाह्य कारण से लंबे काल तक जी सके ऐसा आयुष्य भी गोल होकर अल्पकाल में ही नाश हो जाये। प्रदेशों की अपेक्षा से भोग लिया जाये जबकी काल की अपेक्षा से कम हो जाये वह ''**अपवर्तनीय**'' आयुष्य कहलाता है।

आयुष्य कर्म के चार भेद हैं :-

१) देवायुष्य कर्म :- जिनकी काया कंचन की भांति चमकती दमकती है, उज्वल कांति और तेज से परिपूर्ण होती है, उन्हें देव कहते हैं। देव गति के किसी भी एक भव में जन्म से मरण तक टिका कर रखने वाला कर्म वह **देवायुष कर्म** कहलाता है।

२) मनुष्यायु कर्म - वस्तुस्थिति को यथार्थ समझ सके वह मनुष्य। मनुष्य गति के कोई भी एक भव में जन्म से मृत्यु पर्यंत टिका कर रखने वाला कर्म वह **मनुष्यायु कर्म** कहलाता है।

३) तिर्यंचायु कर्म - तिरछा चले वे तिर्यंच। बाहर से तिरछे चले और अंदर से विवेकहीन वर्तन करें। मन चाहे वहाँ मल-मूत्र करें, यहाँ वहाँ मुंह डाले, लोटें इससे विवेकहीन प्रवृतिवाले तिर्यंच हैं। ऐसी तिर्यंच गति के किसी भी एक भव में जन्म से मरण तक टिका कर रखने वाला कर्म वह **तिर्यंचायु कर्म** कहलाता है।

४) नरकायु कर्म - महाभयंकर पापो को भोगने का स्थान वह नरक। उस नरक गति के भव में जन्म से मृत्यु पर्यंत टिका कर रखने वाला कर्म वह **नरकायु कर्म** कहलाता है।

प्रथम की तीन आयुष्य का समावेश पुण्य प्रकृति में होता है। जबकि नरकायु का पाप प्रकृति में समावेश होता है।

तिर्यंच गति में दुःख है फिर भी वहाँ जीने की इच्छा है, परंतु नरक में तो अतिशय दुः ख होने से वहाँ से जल्दी छुटने के भाव जीव को होते हैं, इसलिये पाप प्रकृति कही है।

आयुष्य कर्म की विचित्रताएं

इस कर्म का उदय चालु हो तब तक हम इच्छा करें तो भी दूसरी गति में जा नहीं सकते इच्छा न हो ऐसी गति में इस कर्म के उदय से जाना ही पडता है।

दूसरा सातो कर्म हर समय बांधते हैं। यह कर्म हर समय न बँध कर भव में एक ही बार, भव के तीसरे, नवमें और सत्तावीसवें भाग में अथवा आखरी अंतर्मुहुर्त में भी बंधता है।

प्रायः आयुष्य कर्म पर्व तिथि को बंधता है (आठम, चौदस, पूनम, अमावस्या) इससे पर्व को आरधनामय बनायें, विराधना से अटकें तो शुभ शुद्ध भाव में रमण करते सद्‌गति का आयुष्य बांधा जाय।

यह कर्म घट सकता हैं, याने उसकी स्थिति का अपवर्तन होता है, थोडे समय में भोग सकें परंतु उदवर्तना तो होती ही नहीं, याने बढा तो नहीं सकतें।

नाम - कर्म

नाम कर्म चित्रकार जैसा है। इसके ४२,९३,१०३ और ६७ भेद होते हैं।

नाम कर्म के ४२ भेद

गइ-जाइ-तणु-उवंगा-बंधण - संघायणाणि संघयणा ।।
संठाण-वण्ण-गंध-रस-फास-अणुपुव्वि-विहग-गई ।।

गाथार्थ :- गति, जाति, शरीर, उपांग, बंधन, संघातन, संघयण, संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, आनुपुर्वी और विहायोगति, ये चौदह पिंड प्रकृतियाँ है।। २४ ।।

नाम कर्म के ४२ भेद निम्न प्रकार से हैं -

१४ पिंड प्रकृति, ८ प्रत्येक प्रकृति, १० त्रस दसक और १० स्थावर दसक।

(१४ + ८ + १० + १० = ४२)

१४ पिंड प्रकृति

मूल प्रकृति के २-३-४ या उससे अधिक उत्तर भेद हों अथवा उत्तर भेदों का पिंड अथवा समुह वह पिंड प्रकृति कहलाता हैं। ऐसी पिंड प्रकृति चौदह हैं, जो नीचे मुजब हैं :-

१) गति नाम कर्म २) जाति नाम कर्म ३) शरीर नाम कर्म ४) शरीरांगोपांग नाम कर्म ५) शरीर बंधन नाम कर्म ६) शरीर संघातन नाम कर्म ७) संघयण नाम कर्म ८) संस्थान नाम कर्म ९) वर्ण नाम कर्म १०) गंध नाम कर्म ११) रस नाम कर्म १२) स्पर्श नाम कर्म १३) आनुपुर्वी नाम कर्म १४) विहायोगति नाम कर्म।

इनके उत्तर भेदों का वर्णन गाथा नं. तीस में किया गया है।

८ प्रत्येक प्रकृति

पिंड - पयडि - त्ति चउदस, परघा उस्सास - अयवुज्जोयं ।
अ-गुरु लहु-तित्थ-निमिणोवघायमिअ अड्ड पत्तेआ ।।२५।।

गाथार्थ :- पूर्वोक्त गाथा में कही गयी (गति, जाति आदि) कुल चौदह पिंड प्रकृतियाँ है । प्रत्येक प्रकृतियां आठ हैं - १) पराघात २) उच्छवास ३) आताप ४) उद्योत ५) अगुरुलघु ६) तीर्थंकर ७) निर्माण और ८) उपघात

वे प्रकृतियाँ प्रत्येक प्रकृतियाँ कहलाती हैं, जिनके भेद-उपभेद नहीं होते हैं ।

त्रस - दशाक

तस-बायर-पज्जत्तं पत्तेय - थिरं, सुभं च सुभगं च ।
सु-सरा-ऽईज्ज-जसं, तस दसगं, थावर-दसं तु इमं ।।२६।।

गाथार्थ :- १) त्रस २) बादर ३) पर्याप्त ४) प्रत्येक ५) स्थिर ६) शुभ ७) सौभाग्य ८) सुस्वर ९) आदेय १०) यश नाम कर्म यह त्रस दशाक कहलाता है । (इससे विपरीत स्थावर दशाक इस प्रकार है ।)

त्रस दशाक निम्नलिखित है -

१) त्रस नाम कर्म २) बादर नाम कर्म ३) पर्याप्त नामकर्म ४) प्रत्येक नामकर्म ५) स्थिर नाम कर्म ६) शुभ नाम कर्म ७) सुभग (सौभाग्य) नाम कर्म ८) सुस्वर नाम कर्म ९) आदेय नाम कर्म १०) यश नाम कर्म

स्थावर दशाक

थावर-सुहुम-अपज्जं साहारण-अथिर-असुभ-दुभगाणि
दुस्सर-ऽणाइज्ज -ऽजसमिअ नामेसेअरा वीसं ।।२७ ।।

गाथार्थ - स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अपयश ये स्थावर दशाक और उसके विपरीत स्थावर दशाक की दस प्रकृतियाँ निम्नलिखित हैं -

१) स्थावर नामकर्म २) सूक्ष्म नामकर्म ३) अपर्याप्त नामकर्म ४) साधारण नामकर्म ५) अस्थिर नामकर्म ६) अशुभ नामकर्म ७) दुर्भग नामकर्म ८) दुस्वर नाम कर्म ९) अनादेय नाम कर्म १०) अपयश नामकर्म ।

इस प्रकार से नामकर्म के स्थावर दशाक और त्रस दशाक सहित २० होती है । इसमें पराघात वगैरह ८ प्रत्येक प्रकृति मिलाकर कुल २८ प्रत्येक प्रकृति होती हैं, उसमें १४ पिंड प्रकृति मिलाने से ४२ प्रकृतियाँ होती हैं ।

४२ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं -

पिंड प्रकृतियाँ	- १४ (गाथा नं. २४)
प्रत्येक प्रकृतियाँ	- ०८ (गाथा नं. २५)
त्रस दशाक (प्रत्येक)	- १० (गाथा नं. २६)
स्थावर दशाक (प्रत्येक)	- १० (गाथा नं. २७
कुल	- ४२ प्रकृतियाँ

नाम कर्म विशेष संज्ञा

तस-चउ थिर-छक्कं अथिर-छक्कं सुहुम - तिग थावर चउक्कं ।
सुभग-तिगा ऽऽइ विभासा तया - ऽऽइ-संखाहि पयडीहिं ।।२८।।

गाथार्थ - त्रस चतुष्क, स्थिर षट्क, सूक्ष्मत्रिक, स्थावर चतुष्क, सौभाग्य त्रिक आदि संज्ञाएं संख्यानुसार प्रकृति की आदि (शुरु) से गिननी चाहिये ।।२८।।

त्रस चतुष्क इस संज्ञा में दो शब्द हैं १) त्रस और २) चतुष्क इसमें प्रथम प्रकृति लिखते हुए उसके बाद संख्यावाची शब्द लिखा जाता है । उस संख्यावाची शब्द के अनुसार प्रकृतियाँ गिनी जाती हैं ।

१) त्रसचतुष्क - त्रस नाम कर्म से शुरु करके चार प्रकृतियाँ त्रस चतुष्क के अन्तर्गत ली जाती हैं । त्रस चतुष्क से तात्पर्य त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक ये चार प्रकृतियाँ हैं ।

२) स्थिर षट्क - स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर आदेय और यश ये छह प्रकृतियाँ स्थिर षट्क कहलाती हैं ।

३) अस्थिर षट्क - अस्थिर, अशुभ, दौर्भाग्य, दुःस्वर, अनादेय, और अपयश ये छः प्रकृतियाँ अस्थिर षट्क कहलाती हैं ।

४) सूक्ष्म त्रिक - सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन तीन प्रकृतियों को सूक्ष्म त्रिक कहते हैं ।

५) स्थावर चतुष्क - स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन चार प्रकृतियों को स्थावर चतुष्क कहते हैं ।

६) सौभाग्य त्रिक - सौभाग्य, सुस्वर और आदेय इन तीन प्रकृतियों को सौभाग्य त्रिक कहते हैं ।

आदि शब्द से दूसरी भी दुर्भग त्रिक वगैरह संज्ञाएं जानना । जो प्रकृति कही हो उससे लेकर जितनी संज्ञा हो उतनी प्रकृतियां जानना ।

वन्न-चउ अगुरुलहु-चउ, तसा - इ दु ति चउर छक्क मिच्चाई ।
इअ अन्नावि विभासा तया, ऽऽइ संखाहि पयडीहिं ।।२९।।

गाथार्थ - वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क, त्रस व्दिक, त्रस त्रिक, त्रस चतुष्क त्रस षट्क इत्यादि की भांति अन्य संज्ञाएं भी उस उस कर्म (प्रकृति) के आदि (शुरुआत) में रखकर उतनी संख्या वाली प्रकृतियों द्वारा करनी चाहिये ।

१) वर्ण चतुष्क - १) वर्ण २) गंध ३) रस और ४) स्पर्श

२) अगुरु लघु चतुष्क - १) अगुरुलघु २) उपघात ३) पराघात ४) उच्छवास

३) त्रस द्विक - १) त्रस २) बादर

४) त्रस त्रिक - १) त्रस २) बादर ३) पर्याप्त

५) त्रस चतुष्क - १) त्रस २) बादर ३) पर्याप्त ४) प्रत्येक

६) त्रस षट्क - १) त्रस २) बादर ३) पर्याप्त ४) प्रत्येक ५) स्थिर ६) शुभ

ऐसी और दूसरी जो विशेष संज्ञाए, अगले सूत्र में कहे जायेंगे वहां प्रकृति के नाम से लेकर उतनी संख्यावाली प्रकृतियों की संज्ञा जानना ।

पिंड प्रकृतियों के ६५ उत्तर भेद (नाम कर्म के ९३ भेद)

गइ-आईण उ कमसो, चउ पण पण ति पण पंच छ छक्कं ।
पण-दुग-पण ऽट्ठ चउ दुग इअ उत्तर भेय-पण-सट्ठी ।।३०।।

गाथार्थ - गति, आदि, चौदह पिंड प्रकृतियों के अनुक्रम से चार, पाँच, पाँच, तीन, पाँच, पाँच, छह, छह, पाँच, दो, पाँच, आठ , चार और दो उत्तर भेद होने से कुल पैंसठ भेद होते है ।।३० ।।

गति नाम कर्म के ४ उत्तर भेद हैं । जाति नाम कर्म के ५ उ. भेद हैं । शरीर नाम कर्म के ५ भेद हैं । अंगोपांग नाम कर्म के ३ भेद हैं । बंधन नामकर्म के ५ भेद है । संघातन नाम कर्म के ५ उ. भेद है । संघयण नाम कर्म के ६ उ. भेद है । संस्थान नाम कर्म के ६ उ. भेद हैं । गंध नामकर्म के २ उ.भेद हैं । रस नाम कर्म के ५ उत्तर भेद हैं । स्पर्श नामकर्म के ८ उ. भेद हैं । आनुपुर्वी नाम कर्म के ४ उत्तर भेद हैं । विहायोगति नाम कर्म के २ उ. भेद हैं ।

४+५+५+३+५+५+६+६+५+२+५+८+४+२ = ६५

इस तरह १४ पिंड प्रकृतियों के ६५ उत्तर भेद हैं ।

नाम कर्म की प्रकृतियों की ९३-१०३ और ६७ की संख्या

अड-वीस जुआ ति-नवइ संते, वा पनर-बंधणे ति-सयं ।
बंधण संघाण-गहा तणूसु सामण्ण-वण्ण चऊ ।। ३१ ।।

गाथार्थ - (पूर्वोक्त गाथा में बताये गये ६५ भेदों में) अठ्ठावीस भेद जोडे जाये तो नाम कर्म के ९३ भेद होते हैं । वे सत्ता में गिने जाते हैं । पाँच के स्थान पर पंद्रह बंधन गिने जाये तो एक सौ तीन भेद होते हैं । वे भी सत्ता में लिये जाते हैं ।बंधन और संघातन की गणना शरीर नाम कर्म में कर ली जाये और वर्ण चतुष्क सामान्य रुप से लिये जाये तो सडसठ भेद होते हैं ।

नाम कर्म की ९३ प्रकृतियाँ

पूर्व गाथा ३० में वर्णित पिंड प्रकृतियों के ६५ भेद में २८ प्रत्येक प्रकृतियाँ (पराघात आदि ८ प्रत्येक प्रकृतियां + १० त्रसदशक + १० स्थावर दशक) मिलायें तो नाम कर्म की ९३ प्रकृतियाँ होती हैं ।

नाम कर्म की १०३ प्रकृतियाँ

सत्ता में पाँच बंधन लिये है, उसके स्थान पर १५ बंधन लें तो १० प्रकृतियां बढेगीं इससे (९३ + १० =१०३) एक सौ तीन प्रकृतियां नाम कर्म की होती हैं ।

नाम कर्म की ६७ प्रकृतियाँ

नाम कर्म की १०३ प्रकृतियों में १५ बंधन लिये हैं, तथा पाँच भेद संघातन के हैं । ये २० प्रकृतियाँ शरीर बांधते हैं , तभी साथ ही बाँधते हैं, इसलिये उन्हें अलग न गिनकर अगर पाँच शरीर में ही समा लिये जायें तो ये बीस प्रकृतियाँ कम होती हैं ।

उसी तरह वर्ण-गंध-रस-स्पर्श के २० भेद हैं । उन्हें अलग न गिनकर वर्ण चतुष्क रुप चार में ही समा लिये जायें तो १६ प्रकृतियाँ कम होती है । याने कुल (२० +१६ = ३६) छत्तीस प्रकृतियाँ कम होती है ।

नाम कर्म की एक सौ तीन प्रकृतियों में से छत्तीस प्रकृतियाँ कम करने में आयें तो (१०३ - ३ =६७) सडसठ प्रकृतियाँ नाम कर्म की होती हैं ।

विरति वाटिका

भोग एंव उपभोग

जहां जीवन है वहां भोग है...

जहां जीवन है वहां उपभोग भी है....

एक ही बार भोगने में आये वो उपभोग.....

जो वस्तु बारम्बार भोगने में आये वो परिभोग ।

हाँ ! जहां जीवन है वहां भोग एवं उपभोग होते है, परंतु यदि भोग और उपभोग पर हमारा नियंत्रण न हो तो हम पशु से भी बदतर जीवन जी रहे हैं । जीवन को सच्चे अर्थ में जीने के लिये भोग एवं उपभोग में मर्यादा आवश्यक ही नहीं बल्कि अनिवार्य है ।

मांस,मदिरा जैसे तामसिक, लहसुन-प्याज जैसे तामसिक आहार लेने से मानसिक विकार एवं क्रुरता में वृद्धि होती है, ऐसे परिणाम वाले जीव धर्म करने की पात्रता व योग्यता खो बैठते है । दया, क्षमा, ज्ञान, विवेक आदि का नाश होता है ।

परिभोग में घर, दुकान, वस्त्र, गहने, गाडी आदी का समावेश होता है । यदि इन सब में नियम न हो तो लोग उसे ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने के लिये लाचार बनाता है, ऐसा इंसान धर्म को भूलकर ज्यादा से ज्यादा भोग, उपभोग की सामग्री प्राप्त करने अधर्म के मार्ग पर जाने को तैयार हो जाता है । अनेक पापस्थानको से अपने जीवन को मलिन बनाता है । अशुभ कर्मो का उपार्जन कर पाप के भार से भारी बनता है । ऐसा जीव दुःख व दुर्गति के सिवाय कुछ भी पा नहीं सकता ।

भवोभव में हमने जो भूले की है उन्हें सुधारने का अवसर यहां हमें मिला है, यदि इस अवसर का फायदा उठा लेगें तो ही आत्म कल्याण साध पायेगें वरना जीवन हार जायेगें ।

हमारे जीवन बाग को सुंदर बनाने ......

हमारे शरीर को निरोगी रखने.....

विषयो पर काबू पाने के लिये....

चलिये ! भोग तथा उपभोग में विवेक लाये, नियमित बने, इसके लिये सातवें भोगोपभोग व्रत को एवं उसके अतिचारो को समझने का पुरुषार्थ करते है, उसके अर्थ का विचार करते है ।

सातवां भोगोपभोग विरमणव्रत यह दूसरा गुणव्रत दो भेद से है, इसमें एक भोग से दूसरा कर्म से । इसमें भी भोग के दो भेद है, एक उपभोग एवं दूसरा परिभोग । यहां आहार फूल-फल वगैरह जो एक बार भोगते है, उसे उपभोग कहते है, एवं कपडे, गहने वगैरह जो वस्तु बारम्बार भोगते है, उसे परिभोग कहते है ।

अब श्रावक को प्रथम उत्कृष्ट से तो प्रासूक शुद्धमान निरवद्य आहार लेना चाहिये परंतु यदि ऐसा नहीं ले पा रहे हो तो भी सचित परिहारी तो अवश्य बनना चाहिये, वो भी नहीं बन सके तो मद्य आदि अभक्ष्य वस्तु की जिसका भक्षण करने में बहुत ही पाप है उसका त्याग करके प्रत्येक मिश्र वस्तु का प्रमाण कर लेना चाहिये, इसीलिये तो कहा है कि वो निरवद्य आहार, अचित्त आहार अथवा मिश्र आहार करता भला श्रावक आत्मा को रखता है ।

१) प्रथम सचित : वस्तु का प्रमाण किया हो कि इतने सचित्त की छूट इसके उपरांत का नहीं खाना ऐसा

नियम लेने के बाद अन्जाने मे अनाभोग से छूट रखी हुई हद से ज्यादा सचित्त लेने में आये अथवा सचित्त पानी के नियम वाले ने तीन उबाली आये तब अचित्त हो, उसके बदले एक उबाली आये और उसे अचित्त हुआ समझकर पानी वापरे या सचित्त वस्तु को पकाते हुए कुछ कच्चा रह जाय और उसे अचित्त जान खाय तो प्रथम सचित्त आहार नामक अतिचार जानना।

२) सचित्त प्रतिबद्ध अतिचार : रायण, बोर बीज सहित मुख में डालकर चूसी हो अर्थात मुंह में फल का बीज घूमाते रहे हो, पक्की केरी चूसी हो और मन में विचार करे कि यह तो पका फल है, उसको चूस रहा हुं पर उसमें गुठली सचित्त है, उसके साथ प्रतिबध्द है वो विचार नहीं करे, उसी तरह खेर के झाड की गांठ में से गोंद उखाडकर तत्काल उसे अचित्त समझकर खाये पर ऐसा नहीं विचारे की गोंद तो अचित्त है, पर उसे सचित्त का स्पर्श लगा हुआ है, इस कारण अभक्ष्य है यह उपयोग न रखे तो सचित्त के नियमवाले को दूसरा अतिचार लगता है।

३) अपक्वौषधि : अनछाने हुए (बिना छाने हुए) आटे आदि, उन्हें अग्निसंस्कार न किया हो और ऐसा का ऐसा ही कच्चा फांके, सिद्धांत में तो कहा है कि अनाज पीसवाने बाद भी कितने दिन सचित्त मिश्र रहता है, फिर अचित्त होता है, उसे अचित्त की बुद्धि से खाये तथा रोटी में रहा हुआ कण वो सचित्त है, उसका अचित्त मान भक्षण करे तो तीसरा अतिचार लगता है।

४) दुःपक्वौषधि : कुछ कच्चे व कुछ पक्के ऐसे हरे चने, पोंक, ऊंबी, ज्वार के पोंक इत्यादि सर्व जाति के पोंक उन पर अग्निसंस्कार हुआ इसलीये वो अचित्त हो गये ऐसा अचित्त मानकर आहार करे तो उसे यह चौथा अतिचार लगता है।

५) तुच्छोषधि : कच्ची इमली, कच्चे वाघरडे यानि पतले, लंबे बीजवाली बबूल के आकार वाली जो फल्ली होती है वो तथा आम आदि के महोर एवं सूक्ष्म केरी जैसी असार वस्तुये की जिन्हें खाने से तृप्ति भी नहीं होती एवं भूख भी नहीं मिटती, परंतु आरंभ बहुत होता है तथा प्रसंगदोष भी बहुत लगता है, इसलीये ऐसी चीज का भक्षक करे तो पांचवा अतिचार लगता है।

सातवें भोगोपभोग व्रत में - एक बार उपयोग में आये ऐसी भोग वस्तुओ का एवं बारम्बार उपयोग मे आये ऐसी उपभोग की वस्तुओ का नियम करने का है। यह व्रत भोजन से एवं कर्म से ऐसे दो प्रकार से है इसमें भोजन प्रकार के चौदह नियम प्रतिदिन दिन के व रात्रि के धारण करके पालने के है। ये चौदह नियम कहते है १) सचित्त-वनस्पति, पानी वगैरह का वजन और संख्या से प्रमाण २) द्रव्य, खाने के पदार्थो की संख्या ३) विगई - घी, तेल, दूध, दही, गुड एवं तली हुई चीजे इन छः विगई में से अमुक का त्याग ४) पैरो में पहने जाने वाली चप्पल आदिकी संख्या ५) सौंफ, धनादाल, इलायची आदि का वजन ६) वस्त्रों की संख्या ७) फूल, इत्र आदि सुगंधी पदार्थो का वजन ८) गाडी, विमान, जहाज आदि वाहनो की संख्या ९) खाट, शय्या, आसन आदि की संख्या १०) विलेपन करने की पीठी, तेल आदि का वजन ११) ब्रम्हचर्य की धारणा १२) चार दिशा-विदिशा में और उपर-नीचे जाने का प्रमाण १३) स्नान की संख्या १) खाने-पीने की वस्तुओ का वजन ये चौदह नियम सुबह में दिवस के लिये एवं शाम को रात्रि के लिये धार कर प्रतिज्ञा लेकर प्रतिदिन पालना चाहिये।

सातवां भोगोपभोग विरमणव्रत स्वीकारने के लिये हमें निम्न अनुसार प्रतिज्ञा करने की होती है **'' मैं सात व्यसन, बावीस अभक्ष्य, बत्तीस अनंतकाय तथा पन्द्रह कर्मादान का त्याग करता हुं तथा यथाशक्ति चौदह नियमों का पालन करुंगा। ''**

लिये हुए पच्चक्खाण के सुंदर पालन हेतु नीचे के नियम हमें सहायता करते है -

व्यसन.....अभक्ष्य.....अनंतकाय संबंधी नियम :-

१) मैं सात महाव्यसन १) जुगार (सट्टा), २) शिकार ३) मांस ४) मदिरा (दारु) ५) चोरी ६) परस्त्रीगमन एवं ७) वेश्यागमन का त्याग करुंगा।

२) मैं अंडे खाऊगां नहीं, बेचूंगा नहीं, फोडूंगा नहीं ।
३) मैं अंडे या चरबी वाले चोकलेट, बिस्कीट, बोर्नवीटा वगैह वापरुंगा नहीं ।
४) मैं शक्ति आदि के लिये अभक्ष्य दवा नहीं बापरुंगा ।
५) मैं वटवृक्ष, पीपल, औदुंबर, प्लक्ष एवं काकोदुंबर इन पांच वृक्षो के फल नहीं खाऊंगा ।
६) मैं पान-तम्बाकू, मावा, मसाला, गुटका, सुपारी, तपकीर, बीडी, सिगरेट, अफीम, चरस, ब्राऊनशूगर वगैरह खाऊंगा नहीं ।
७) मैं बर्फ, आइस्क्रीम, ठंडे सॉफ्टड्रिंक्स, कुल्फी एवं फ्रिज के पानी का त्याग करुंगा ।
८) मैं गोले (बरफ के) खाऊंगा नहीं ।
९) मैं जहर (बिष, अफीम, सोमल) खाऊंगा नहीं, किसी को खिलाऊंगा नहीं एवं बेचुंगा नहीं ।
१०) मैं किसी भी प्रकार की मिट्टी खाऊंगा नहीं ।
११) मैं रात्रिभोजन का त्याग करुंगा ।
१२) मैं रात को घर पर खाना खाने के बाद कुछ भी नहीं खाऊंगा ।
१३) मैं प्रतिदिन चौविहार करुंगा ।
१४) मैं प्रतिदिन तिविहार करुंगा ।
१५) मैं पांच तिथि को अवश्य रात्रिभोजन का त्याग करुंगा ।
१६) सोलह प्रहर (४८ घंटे) या दो रात्रि गुजरने के बाद का दही-छाछ या उसमें से बने कोई भी व्यंजन नहीं खाऊंगा ।
१७) मैं बासी पदार्थ नहीं खाऊंगा ।
१८) मैं बोळ अचार नहीं वापरुंगा ।
१९) मैं कोई भी अचार नहीं खाऊंगा ।
२०) मैं अच्छी तरह से गरम किये बिना के दूध,दही,छांछ (गोरस) के साथ कठोळ नहीं वापरुंगा (विदळ त्याग)
२१) मैं सीताफळ, जामुन, चणीबोर, वगैगरह तुच्छ फल नहीं खाऊंगा ।
२२) मैं बैंगन नहीं खाऊंगा ।
२३) मैं अपरिचित फल नहीं खाऊंगा ।
२४) मैं ब्रेड, पाव, टोस्ट, डबलरोटी, सेण्डवीच, पावभाजी वगैरह नहीं खाऊंगा ।
२५) मैं होटल में नहीं खाऊंगा ।
२६) मैं बाजार की बाहर की वस्तु नहीं खाऊंगा ।
२७) मैं खडे - खडे नहीं खाऊंगा ।
२८) मैं कस्टर्ड पावडर का उपयोग नहीं करुंगा ।
२९) मैं फागुन चौमासी के बाद भाजीपाला, कोथमीर, सूखा मेवा नहीं खाऊंगा ।
३०) मैं अंकुरित कठोळ नहीं वापरुंगा ।
३१) मैं खाखरे, मिठाई वगैरह का काल (समय) बराबर सम्हालुंगा ।
३२) मैं प्रतिदिन आयंबिल के तपस्वीयो की अनुमोदना करने एक रुखी रोटी जरुर खाऊंगा ।
३३) मैं प्रतिदिन उणोदरी तप करुंगा ।
३४) मैं पत्ताकोबी, फूलगोभी की सब्जियों का त्याग करुंगा ।
३५) मैं सर्व प्रकार के अनंतकाय कंदमूल का त्याग करुंगा ।

चौदह नियम संबधित नियम :-

१) मैं प्रतिदिन सचित्त वस्तु का त्याग करुंगा ।
२) मैं प्रतिदिन ...... से ज्यादा सचित्त नहीं वापरुंगा ।
३) मैं कच्चा नमक नहीं वापरुंगा ।
४) मैं प्रतिदिन......... से ज्यादा द्रव्य (खाने-पीने की वस्तु) नहीं वापरुंगा ।
५) मैं प्रतिदिन......... से ज्यादा विगई नहीं वापरुंगा, विगई छः है - दूध, दही, घी, गुड, तेल कडा (तली हुई वस्तु)
६) मैं प्रतिदिन........ से ज्यादा जोडी उपानह (चप्पल, जुते, मोजे इत्यादी) नहीं पहनुंगा ।
७) मैं प्रतिदिन......... ग्राम से ज्यादा मुखवास (खारी सौंफ, बडी सौंफ, धनादाल, सुपारी आदि) नहीं खाऊंगा ।
८) मैं प्रतिदिन........ जोडी से ज्यादा कपडे नहीं पहनूंगा ।
९) मैं प्रतिदिन....... ग्राम से ज्यादा वस्तु सूघूंगा नहीं ।
१०) मैं प्रतिदिन........ से ज्यादा वाहन में नहीं बैठूंगा ।
११) मैं प्रतिदिन .... से ज्यादा बैठने एवं लेटने-सोने के लिये आसन या शय्या का उपयोग नहीं करुंगा ।
१२) मैं प्रतिदिन......ग्राम से ज्यादा वस्तु शरीर के उपर लगाने हेतु (विलेपन करने) वापरुंगा नहीं, साबुन, तेल, पावडर, क्रीम वगैरह ।
१३) मैं प्रतिदिन ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करुंगा ।
१४) मैं दिन के समय में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करुंगा ।
१५) मैं पांच तिथि, पर्युषण पर्व, आयंबिल की ओळी वगैरह पर्वदरम्यान सम्पूर्ण ब्रम्हचर्य का पालन करुंगा ।
१६) मैं प्रतिदिन चारो दिशा में ...... कि.मी. से ज्यादा दूर जाऊंगा नहीं ।
१७) मैं प्रतिदिन .... से ज्यादा बार स्नान नहीं करुंगा ।
१८) मैं प्रतिदिन........ किलो से ज्यादा भोजन नहीं करुंगा ।
१९) मैं प्रतिदिन......ग्राम से ज्यादा नमक वगैरह पृथ्वीकाय नहीं वापरुंगा ।
२०) मैं प्रतिदिन...... बाल्टी से ज्यादा पानी नहीं वापरुंगा ।
२१) मैं प्रतिदिन...... से ज्यादा लाईट का उपयोग नहीं करुंगा ।
२२) मैं प्रतिदिन..... से ज्यादा चूल्हे नहीं वापरुंगा ।
२३) मैं प्रतिदिन....... से ज्यादा पंखे नहीं वापरुंगा ।
२४) मैं प्रतिदिन ...... से ज्यादा ए.सी. नहीं वापरुंगा ।
२५) मैं प्रतिदिन....... से ज्यादा बार झूले के उपर नहीं बैठुंगा ।
२६) मैं प्रतिदिन....... किलो से ज्यादा सब्जी, फल वगैरह नहीं खाऊंगा ।
२७) मैं प्रतिदिन....... से ज्यादा शस्त्र नहीं वापरुंगा, सुई, कैंची, चाकू, छूरी, चिमटा वगैरह ।
२८) मैं प्रतिदिन....... से ज्यादा लिखने के साधन नहीं वापरुंगा, पेन, बॉलपेन, पेसिंल, चॉक वगैरह ।
२९) मैं प्रतिदिन ...... से ज्यादा खेती / बगीचे के साधन नहीं वापरुंगा ।
३०) मैं बिना कारण के रात्रिस्नान नहीं करुंगा ।
३१) मैं हफ्ते में एक ही दिन साबुन से स्नान करुंगा ।
३२) मैं शौक की खातिर सेंट, अत्तर आदि सुगंधी पदार्थ वापरुंगा नहीं ।
३३) मैं चटनी, अचार, कचूमर का त्याग करुंगा ।
३४) मै सारे प्रकार के मुखवास का त्याग करुंगा ।